© INNOVATIVE RESEARCH THOUGHTS | Refereed | Peer Reviewed | Indexed
ISSN : 2454 – 308X | Volume : 04 , Issue : 07 | October - December 2018

योगसाधना का महत्त्व

जयपाल सिंह राजपूत, तमन्ना मलिक

[1]सहायक प्राध्यापक, योग विज्ञान , चौ. रणबीर सिंह विश्वविद्यालय, जीन्द।

[2]एम॰ए॰ योग द्वितीय वर्ष , चौ. रणबीर सिंह विश्वविद्यालय, जीन्द।

सारांश :–

प्रस्तुत षोध अध्ययन का उद्देष्य मानव को संसार सागर से मुक्ति का हेतु योग साधना के महत्त्व पर प्रकाष डालना है तथा योगाभ्यास से एक साथ अनेक षारीरिक, मानसिक व आध्यात्मिक लाभ प्राप्त हो सामान्य मानवता के स्तर से महामानव का स्तर साधक कैसे प्राप्त कर लेता है यह योग साधनारत साधकों को यहां दर्षाया गया है।

योग का महत्त्व प्राचीन काल में भी था और आधुनिक काल का परिवेश देखते हुए योगरूपी साधना का महत्त्व और अधिक बढ़ गया है। यह ऐसी विद्या है जिसकी सहायता से पंचक्लेशों को तनु करके मनुष्य के चित्त की वृत्तियों का षमन हो, वह स्वयं का साक्षात्कार करके परमात्मा में लीन हो सके।

योग शब्द लघु है किंतु इसमें गहन अर्थ समाहित है। ब्रह्मतत्व की प्राप्ति हेतु, साधक की अभिलाषा अनुसार, योगसाधना के विभिन्न मार्ग जैसे कि राजयोग, भक्तियोग, कर्मयोग, ज्ञानयोग, सहजयोग, कुण्डलिनी योग इत्यादि का वर्णन योग ग्रन्थों में मिलता है। जिनमें मुख्यतः गीता, योगसूत्र, उपनिषद आदि आते हैं। इसी प्रकार शोधन क्रियाएँ, बंध–मुद्रा, आसन, प्राणायाम, धारणा, ध्यान आदि इनका उल्लेख विभिन्न यौगिक ग्रन्थों में मिलता है। महर्षि पंतजलिकृत योगसूत्र में अष्टांग योग जिसका उद्देश्य राजयोग की प्राप्ति है, जोकि समाधि अवस्था में आत्म साक्षात्कार कर मोक्षत्व को प्राप्त करना है। संसार में बन्धन तथा राग का मूल कारण मन है। एक योगी इस मन को आत्मकल्याण व परमात्मा चिंतन में लगाकर इस संसारिक भटकाव की स्थिति से अलग हो। योग साधना द्वारा ईष्वरोन्मुख रहने का निरंतर प्रयास करता रहता है।

कूट शब्द :–

योगसाधना, वृत्तियाँ, अष्टांग, स्वरूपावस्था, तत्त्वदर्शी, इश्वरोन्मुख, तेजोमय, योगाग्निमय।

प्रश्न उठता है कि योग क्या है आज योग का व्यापक स्तर पर प्रचार–प्रसार होने के कारण योग के नाम पर अनेकानेक पद्धतियां सामने आ रही हैं जैसे की भक्तियोग, ज्ञानयोग, हठयोग, तंत्रयोग, ध्यानयोग, सांख्ययोग, सहजयोग, लययोग आदि।

प्राचीन व्याकरण शास्त्र के आधार पर विचार किया जाए तो स्पष्टतः योग के स्वरूप की जानकारी हो जाएगी। वहां योग सम्बन्धी दो धातुएँ प्राप्त होती हैं – युज् समाधौ तथा युजिर्योगे। युज् समाधौ का अर्थ है – योग समाधि है। वास्तव में महर्षि पतंजलि कृत योगशास्त्र इसी अर्थ को लेकर व्याख्यान करता है। भाष्यकार व्यास ने स्वयं योग शब्द को समाधि के लिए प्रयुक्त किया है 'योगस्समाधिः'[1]। इसी प्रकार महर्षि पतंजलि 'योगश्चित्त वृत्तिनिरोधः'[2] कहते हैं। चित्त की चंचल वृत्तियां बवंडर की तरह होती है जिनका निरोध करने पर एकाग्रता आती है। यह एकाग्रता ही ध्यान है जो निरन्तरता से बना रहने पर समाधि हो जाता है। अतः महर्षि पतंजलि का भी यही प्रयोजन है।

---

1 'योगस्समाधिः' पातंजलयोगदर्शनम् (व्यासभाष्य) 1/1, सुरेशचन्द्र श्रीवास्तव, पृष्ठ सं0 1

2 'योगश्चित्त वृत्तिनिरोधः' योगदर्शन 1/2, हरिकृष्णदास गोयन्दका, पृष्ठ सं0 1

युज् समाधौ के पश्चात् दूसरी धातु 'युजिर् योग' का अर्थ मिलन, जोड, संयोग आदि के रूप में किया गया है। योग की अवस्था आत्मा व परमात्मा के मिलन की अवस्था है। वास्तव में सामान्य भाषा में कहे तो योग है अध्यात्म का विज्ञान। योग है समाधि का प्रयास करें। कबीर साहिब ने कहा है ''कोठरे महि कोठरी परम कोठरी बीचारि।''[1] शरीर है, शरीर के भीतर मन है, मन के भीतर आत्मा है। स्थूल शरीर में सूक्ष्म शरीरस्थ विराजमान आत्मा तक की दूरी कैसे तय करें इसका नाम है योग। योग नाम बहुत छोटा सा प्रतीत होता है परन्तु योग का आयाम है बहुत व्यापक।

योग जीवन को सार्थक बनाने वाले साधनों में उत्तम साधन है। इसका महत्व तो इसी से जाना जा सकता है कि यह मनुष्य को सभी प्रकार के आवरणों और विक्षेपों से सदा के लिये मुक्त करता हुआ ऐसा विशुद्ध अन्तःकरणवाला बना देता है कि परमात्मा से उसका अभिन्न सम्बन्ध अपने–आप स्थापित हो जाता है। श्रीमद्भगवदगीता में भगवान श्रीकृष्ण का कथन है।

अर्थात 'योग से युक्त, विशुद्ध अन्तःकरण वाला विजितात्मा – शरीरजयी, जितेन्द्रिय और सब भूतों में अपने आत्मा को देखने वाला यथार्थ ज्ञानी हो जाता है।[2]

इस प्रकार स्थित हुआ पुरूष लोकसंग्रह के लिये कर्म करता हुआ भी उनसे लिप्त नहीं होता अर्थात् कर्मों से नहीं बंधता।

वस्तुतः योग तन को सुगठित, मन को नियन्त्रित और आत्मा को उदभासित करता है। यह सभी अभ्युत्थानों का सबसे मुख्य आधार एवं सारस्वत उपलब्धि का अक्षुण्ण स्त्रोत हैं। इसके नियमित अभ्यास से मनुष्य के सारे संशय दूर हो जाते हैं। फिर तो वह जीवन के चरम लक्ष्य को ही प्राप्त कर लेता है। अपनी ऊँचाई के चरम बिन्दु पर पहुँचकर योग आत्मा और परमात्मा के मिलन का अनुपम माध्यम बन जाता है।

योगाभ्यास से जब साधक के हृदय की अहंता – ममतारूप समस्त ग्रन्थियाँ भलीभांति कट जाती है, उसके सब प्रकार के संशय सर्वथा नष्ट हो जाते हैं और उसे यह, दृढ निश्चय हो जाता है कि 'परमेश्वर अवश्य हैं और वे निश्चय ही मिलते हैं। तब वह इस शरीर में रहते हुए ही परमात्मा का साक्षात्कार करके अमर हो जाता है। वह स्वरूपावस्था को प्राप्त कर लेता है।[3]

तत्वदर्शी महर्षियों ने परमात्मा की प्राप्ति का सर्वोत्तम उपाय 'ध्यान' अर्थात् 'योग' ही बताया है।[4]

योग के महत्व पर प्रकाश डालते हुए स्वयं भगवान श्रीकृष्ण ने उद्धवजी को यही समझाया था कि – प्रिय उद्धव ! मैनें ही वेदों में एवं अन्यत्र भी मनुष्यों का कल्याण करने के लिए अधिकारी भेद से तीन प्रकार के योग – ज्ञानयोग, कर्मयोग और भक्तियोग का उपदेश किया है। मनुष्य के परम कल्याण के लिये इनके अतिरिक्त और कोई उपाय कहीं नहीं है।[5]

---

1 सम्पूर्ण अध्यात्म, ओशोसिद्धार्थ, पृष्ठ सं0 19

2 योगयुक्तो विशुद्धात्मा विजितात्मा जितेन्द्रियः।
सर्वभूतात्मभूतात्मा कुर्वन्नपि न लिप्यते।।।
श्रीमद्भवगद्गीता, 5/7, जयदयाल गोयन्दका, पृष्ठ सं0 128

3 यदा सर्वे प्रभिद्यन्ते हृदयस्येह ग्रन्थयः।
अथ मत्योऽमृतो भवत्येतावद्ध्यनुशासनम्।। कठोपनिषद् 2/3/15, उपनिषद् अंक, पृष्ठ सं0 239

4 ध्याननिर्मथनाभ्यासाद् देवं पश्येन्निगूढवत्।। श्वेताश्वतरोपनिषद 1/14, उपनिषद् अंक, पृष्ठ सं0 376

5 योगास्त्रयो मया प्रोक्ता नृणां श्रेयोविधित्सया।
ज्ञानं कर्म च भक्तिर्वै नोपायोऽन्योऽस्ति कुत्रचित्।। श्रीमद्भागवत महापुराणम् 11/20/6, पृ0 सं0 606

यह तो सर्वमान्य सिद्धान्त है कि मन ही बन्धन और मोह का मूल कारण है। ऐसी स्थिति में आवश्यकता है मन को अनुरूपता प्रदान करने की, जिससे भटकाव की स्थिति उत्पन्न ही न हो। तात्पर्य यह है कि योग–साधना द्वारा मन को निरन्तर ईश्वरोन्मुख करने का ही प्रयत्न करना चाहिए।[1]

योग की यह विशेषता है कि उसकी साधना की ज्योति में आत्मतत्व द्वारा परब्रह्म परमात्म–तत्व की प्राप्ति हो जाती है, फिर तो उसके सामने किसी प्रकार के बन्धन के रहने का कोई प्रश्न ही नहीं रह जाता। जिस प्रकार कोई तेजोमय रत्न मिट्टी से लिप्त रहने के कारण छिपा रहता है, अपने असली रूप में प्रकट नहीं होता, परन्तु वही जब मिट्टी आदि को हटाकर धो–पोंछकर साफ कर लिया जाता है, तब अपने असली रूप में चमकने लगता है, उसी प्रकार इस जीवात्मा का वास्तविक स्वरूप अत्यन्त जन्मों में किये हुए कर्मों के संस्कारों से मलिन हो जाने के कारण प्रत्यक्ष प्रकट नहीं होता, परन्तु जब मनुष्य ध्यानयोग के साधन द्वारा समस्त मलों को दूर कर आत्मा के यथार्थ स्वरूप को भली भांति प्रत्यक्ष कर लेता है, तब वह असंग हो जाता है। अर्थात् उसका नाश होकर वह कैवल्य–अवस्था को प्राप्त हो जाता है तथा उसके सब प्रकार के दुःखों का अन्त होकर वह सर्वथा कृतकृत्य हो जाता है। उसका मनुष्य–जन्म सार्थक हो जाता है। उस स्थिति में वह योगी दीपक के सदृश निर्मल प्रकाशमय आत्मतत्व के द्वारा ब्रह्मतत्व को भलीभांति देख लेता है। तब उन जन्मादि समस्त विकारों से रहित, अचल और निश्चित तथा समस्त तत्वों से असंग–सर्वथा विशुद्ध परमदेव परमात्मा को तत्व से जानकर सब प्रकार के बन्धनों से सदा के लिए छुट जाता है।[2]

जब योग साधना करते–करते साधक की आंखों के लिए कोई लक्ष्य नहीं रह जाता, अर्थात् इन्द्रियाँ अपने विषयों से विमुख हो गई है। न ही कोई वायुरोध है और ना ही चित्त देश–काल से बंधा है। धारणा और ध्यान के अभ्यास के लिए किसी प्रकार के यत्न करने की आवश्यकता नहीं है। यही समाधि है, जो कि राजयोग के समान है।[3] ऐसा विद्वान श्रीनिवास अपने ग्रन्थ हठरत्नावली में लिखते हैं :–

योगाभ्यास से एक साथ अनेक लाभ होते हैं जैसे – आलस्य–त्याग, आत्मबल– विस्तार, भय–संशय निवारण, उत्साहवृद्धि, स्वास्थ्यलाभ, बौद्धिक विकास, आध्यात्मिक उत्थान आदि। योग एक व्यवहार–परक विधा है। इसलिये साधारण से साधारण व्यक्ति भी इसके अभ्यास से असाधारणता को प्राप्त कर सकता है वह सामान्य मानव से महामानव बन सकता है।

अनेक योगासन ऐसे हैं, जिन्हें अति सरलता से अपनाकर शारीरिक एवं मानसिक शक्तियों का विकास किया जा सकता है। केवल प्राणायाम करने से शरीर में अतीव स्फूर्ति आ जाती है और मन भी हल्का तथा प्रसन्न रहता है। इतना होने से ही बहुमुखी विकास का द्वार खुलने लगता है, क्योंकि शरीर और मन के प्रसन्न तथा स्वस्थ रहने पर मनुष्य असम्भव से असम्भव कार्यों को भी सम्पन्न कर लेता है।

---

1 युक्तेन मनसा वयं देवस्य सवितुः सवे। स्वर्ग्याय शक्त्या।
बृहद् शुक्लयजुर्वेदसंहिता 11/2, पंडित दौलतराम गौड वेदाचार्य, पृ0 सं0 250

2 यदाऽऽत्मतत्त्वेनं तु ब्रह्मतत्वं
दीपोपमेनेह युक्तः प्रपश्येत्।
अजं ध्रुवं सर्वतत्त्वैर्विशुद्धं
ज्ञात्वा देवं मुच्यते सर्वपाशैः।। श्वेताश्तरोपनिषद् 2/15 उपनिषद् अंक, पृष्ठ सं0 382

3 न दृष्ट लक्षाणि न चिन्तभंगो न देशकालौ न च वायुरोधः।
न धारणाध्यानपरिश्रमो वा समेधमाने सति राजयोगे।। हठरत्नावली 1/14, सतपाल खीचड़, पृष्ठ सं0 6

इसी प्रकार अनेक बन्ध, मुद्राएँ तथा नेति–वस्ति आदि षटकर्मों की प्रक्रियाएँ भी योग–साधना में पर्याप्त सहायक होती हैं। इनके सम्यक अभ्यास के लिये किसी सुयोग्य अनुभवी गुरू का आश्रय लेना चाहिये।

संसार को भयंकर रोगों से मुक्त करना अथवा उनसे बचे रहने का मार्ग–दर्शन करना योग–विधा की महान देन है। आज भी अनेक चिकित्सा–केन्द्रों में विभिन्न प्राणायाम आदि योगाभ्यासों द्वारा विभिन्न शारीरिक एवं मानसिक रोगों की चिकित्सा की जाती है।

योग के सम्यक, अभ्यास से तो रोग और जरा–जन्य कलेशो का परिहार होता ही है, साधक को इच्छामृत्यु की शक्ति भी प्राप्त हो जाती है।

अर्थात् योगाग्निमय शरीर को प्राप्त कर लेने वाले उस योगी के शरीर में न तो रोग होता है, न बुढ़ापा आता है और न उसकी मृत्यु ही होती है।[1]

यह योग का ही प्रभाव है कि मनुष्य का शरीर काल के बंधन में होकर भी काल मुक्त हो जाता है वह वृद्धावस्था को प्राप्त नहीं होता और प्राणवायु पर अधिकार कर लेने से उसका मन भी सदा के लिये परिशुद्ध हो जाता है।[2]

इस प्रकार मनुष्य के सर्वांगीण विकास में योग साधना की भूमिका अत्यन्त महत्वपूर्ण होती है। यह योग–तत्व चरित्र–निर्माण, चिकित्सा–विधान, सामाजिक उत्थान, राष्ट्रोत्थान एवं विश्व–कल्याण की भावना को विकसित करने से लेकर परमात्म साक्षात्कार तक का अद्वितीय साधन है।

---

1 न तस्य रोगो न जरा न मृत्युः
प्राप्तस्य योगग्निमयं शरीरम्। श्वेताश्वतरोपनिषद् 2/12, उपनिषद् अंक, पृष्ठ सं0 381

2 मनोऽचिरात् स्याद्विरजं जितश्वासस्य योगिनः।
वाय्वग्निभ्यां यथा लोहं ध्यातं त्यजति वै मलम्।। श्रीमद्भागवत महापुराणम् 3/28/10, पृष्ठ सं0 140